धर्मव्याध-कथा

लेखक
राजेश्वर झा
बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना

प्रकाशक
श्री अमरनाथ झा
ग्राम–रसुआर, पो०–निर्मली,
जिला–सहरसा

धर्मव्याध-कथा

लेखक

राजेश्वर झा

बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना

प्रकाशक

श्री अमरनाथ झा

ग्राम–रसुआर, पो०–निर्मली,

जिला–सहरसा

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य १) इकाई मात्र

मुद्रक
श्री कामेश्वर प्रसाद
कालिका प्रेस,
आर्यकुमार रोड, पटना-४

प्राक्कथन

भारतवर्ष मे वर्णव्यवस्थाक निर्माण मुख्यतः अर्थशास्त्रक कार्यविभाजन सिद्धान्त पर भेल जे जाति एवं वर्ण सँ सर्वदा भिन्न छल। ऋग्वेद मे अलंकारिक भाषा मे समाज केँ एक जीवित पुरुष कहल गेल अछि। ऋग्वेद भाषा सँ इहो ध्वनित होइछ जे जाहि प्रकारेँ शरीरक सब अङ्ग परस्पर संलग्न रहैछ तथा जँ शरीरक एक अङ्ग मे पीड़ा होइछ तँ ओकर अनुभव शरीरक समस्त अङ्ग मे स्वतः भए जाइछ एवं शरीर मध्य एक तरहक क्रान्ति प्रसारित भए जाइछ ताहि रूपेँ समाजो मध्य पारस्परिक संगठनक तथा जीवन शक्तिक स्थान अछि। एवंप्रकारेँ संगठन वा आनुगतिक भाव केँ व्यंजितक निमित्ते ऋग्वेदक पुरुष-सूक्त मे समाज केँ पुरुषक रूप देल गेल। एहि पुरुषक विभिन्न अङ्गक वर्ण एहि तरहे अछि—"पुरुषक मुँह ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, जाँघ वैश्य तथा पयर शूद्र थिक।"

समाज रूपी पुरुषक मुँह सँ केवल भोजन केनहार मुँहक तात्पर्य नहि भए ओहि मे विशेष रूप सँ मस्तिष्कक समावेश होइछ। मनुष्यक शरीर मे मस्तिष्के सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ अङ्ग थिक। मनुष्यक मस्तिष्क समस्त क्रियाक संचालन कए उदात्त भावना केँ उत्पन्न कए ओकरा जेना सन्मार्ग मे प्रेरित करैछ तहिना समाजक मस्तिष्को अपन अनुभव एवं ज्ञानक द्वारा विशिष्ट योजना उपस्थित करैछ जकरा अपनौला सँ समाज सन्मार्ग मे प्रवृत्त भए अपन उद्दिष्ट तक पहुँचैत अछि। ऋग्वेद मे एहि व्यक्ति केँ ब्राह्मण नाम सँ सम्बोधित कएल गेल अछि। ब्राह्मणक जीवन ब्रह्मप्राप्ति वा सत्यक अन्वेषणे मे व्यतीत होइछ। ब्राह्मण आजीवन समाजसेवा, ज्ञानोपार्जन, ज्ञानवितरण आदि पवित्र कार्य मे संलग्न रहैछ तथा ओकर सांसारिक लाभक यत्किंचितो चिन्ता नहि राखि साधारणतः वेदाभ्यास, तपश्चर्या, योगसाधन आदि मे अपन समय व्यतीत करैत अछि।

ऋग्वेदक अनुसार क्षत्रिय समाजरूपी पुरुषक भुजा थिक। प्रजारक्षण, दान, यज्ञ करब, स्वाध्याय, इन्द्रिय दमन आदि क्षत्रियक कर्तव्य बुझल जाइछ। वैश्यक सम्बन्ध जाँघ सँ कहल गेल अछि। समाजक भरण पोषण निमित्त पशुपालन, कृषि, वाणिज्य आदि वैश्यक कर्तव्य मध्य समावेश कएल गेल अछि।

ऋग्वेद मे शूद्र समाजरूपी पुरुषक पयरक रूप मे कहल गेल अछि। जेना शरीर मे सेवाकार्यक हेतु पयर अछि तहिना समाज मे सेवाकार्यक निमित्त शूद्र थिक। समाजक सेवाक सम्पूर्ण उत्तरदायित्व शूद्र पर तँ रहल किन्तु एहि हेतु ओ नीच नहि बुझल गेल। प्राचीन समाज मे ऊँच-नीचक भाव नहि रहि समाजक विकासक हेतु चारू वर्ण अनिवार्य मानल गेल। शूद्र केँ समाज मे समुचित स्थान प्राप्त छल तथा ओ समाजक एक अविकल अङ्ग मानल गेल। आन-आन वर्ण सन शूद्रहु केँ आत्म-

विकासक पूर्ण अवसर छलैक तथा योग्यतानुसार ओकरा समाज मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त भेल। यजुर्वेद मे शूद्रक वेदाध्ययनक अधिकारक उल्लेख पाओल जाइछ। ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौषीतकी ब्राह्मण मे कवषऐलूषक वर्णन पाओल जाइछ जे दासीपुत्र छलाह। हुनक विद्वताक कारणे गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ आदि महान ऋषियो हुनका आदर सत्कार करैत छलथिन्ह।

ओ ऋषि लोकनि कवषऐलूष कें नमस्कार तथा आध्यात्मिक विकास मे हुनक श्रेष्ठत्व कें स्वीकार कएल। कवषऐलूष ऋग्वेदक कतिपय मंत्रक द्रष्टा सेहो थिकाह।

कक्षीवत्क उल्लेख ऋग्वेद मे बारम्बार आएल अछि। ओहो दासीपुत्र छलाह। ऋग्वेद मे हुनका दीर्घतमस्क पुत्र कक्षीवान अथवा औशिजक पुत्र कक्षीवान ऋषि कहल गेल अछि। कक्षीवानक पुत्री घोषा काक्षीवतीयो मंत्रद्रष्टी छलीह। घोषाक पुत्र सुहस्त्यो घौषेय सेहो ऋग्वेदक तीन मंत्रक द्रष्टा थिकाह।

उपरोक्त उल्लेख सँ प्रतीत होइछ जे शूद्र वा दासीपुत्रहुँ कें आत्मविकासक पूर्ण अवसर देल जाइत छल तथा समाज मध्य शूद्रो कें समुचित स्थान प्राप्त छलैक। शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित अछि जे ब्राह्मण "ओउम्" सँ, क्षत्रिय "भूः" सँ, वैश्य "भुवः" सँ तथा शूद्र "स्वः" सँ उत्पन्न भेल। एतकमे शूद्रो कें समाजक आवश्यक अङ्ग मानि पवित्र गायत्री मंत्रक व्याहृति सँ उत्पन्न कहल गेल अछि। वैदिक वाङ्मय मे राज्याभिषेकक प्रकरण मे आहि गो रत्नीक वर्णन अछि ओहि मे शूद्रो कें सम्मिलित कएल गेल अछि। अतएव ई निश्चित बुझना जाइछ जे समाज मे शूद्र कें केवल दास-कर्म टाकें सम्पादन नहि कए ओकरा आत्मविकासहुक पूर्ण अधिकार प्राप्त छलैक आहि सँ ओ समाज मध्य उच्च स्थान प्राप्त कए गौरवान्वित होइत छल।

एहि मन्तव्यक पुष्टि मे यजुर्वेदक मंत्र—'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।'

—यजुर्वेद २६।२

मे वेदक कल्याणकारी वाणी मनुष्यमात्रक निमित्त कहल गेल अछि। ओ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वा अरण आहे आहि आतिक होथु। यजुर्वेदक एहिमंत्र—'ब्राह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं।'

—यजुर्वेद ३०।५

मे ब्राह्मण कें ब्रह्म सँ, क्षत्रिय कें क्षत्र सँ, वैश्य कें मरुत सँ तथा शूद्र कें तप सँ सम्बन्धित कएल गेल अछि। एहि तपक प्रभाव सँ ओहि मे सँ कतिपय व्यक्ति आत्मविकासक चरम सीमो पर पहुँच गेलाह।

धर्मसूत्र, स्मृति आदि सँ ज्ञात होइछ जे शूद्रक निमित्त शिल्पवृत्ति वा दास्यकर्म निहित छल। आर्यक समाज मे प्रवेश पाबि जेना-जेना ओ प्रगति करैत गेल तेना-तेना ओकर समाज मध्य जीविका निर्वाहक आन-आन साधन स्रोतो प्राप्त होइत गेलैक जे अद्यावधि दृष्टिगोचर होइत अछि। अतएव वर्णाश्रम सँ तात्पर्य ऊँच-नीच सँ नहि

भए मनुष्यक वैयक्तिक जीवन सँ अछि जे आत्यन्तिकालोन्मुखक निमित्त थिक। आत्म-साक्षात्कार मानवक समस्त प्रयत्नक केन्द्रीय स्थान एवं जीवनक महान उद्देश्यक पूर्ति करैत आहि पर मनुष्यक पुनर्जन्मक सिद्धान्त आधारित अछि। आत्माक परम श्रेय जीवन-मरणक बन्धन सँ मुक्त होएब एवं अपना केँ चिन्मय थिक जे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि सँ उपलब्ध होइछ। यद्यपि अत्यन्त प्राचीनहि सँ भौतिकता वा आध्यात्मिकता मे सामञ्जस्य स्थापित करएत गेल तथा दुहु क्षेत्र मे पर्याप्त विकास भेल तथापि अज्ञात केँ सुलझाक प्रयत्न करब तथा प्रकृति, जीव, ब्रह्म, आत्मा, जगत आदिक समस्या केँ सुलझाएब मानव जीवनक महान उद्देश्य मानल जाइछ। एहि उद्देश्यक पूर्तिक निमित्त आश्रम व्यवस्था उपयुक्त प्रतीत होइछ। लौकिक दृष्टि सँ गृहस्थाश्रम अधिक महत्वपूर्ण मानल जाइछ; जाहि पर अन्य तीनू आश्रमक अस्तित्व निर्भर रहैछ। गृहस्थ केँ पञ्च महायज्ञ आदि द्वारा अपन जीवन केँ धार्मिक बनाएब एवं तीनू ऋण सँ उन्मुक्त होयब सुलभ अछि जाहि सँ गृहस्थ केँ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षक उपलब्धि होइछ।

आश्रम व्यवस्थाक अनुसार गृहस्थ केँ आर्थिक विकास सँ सम्बन्धित दुइ प्रकारक आध्यात्मिक एवं आर्थिक उन्नतिक उत्तरदायित्व अछि जे मानव जीवनक वास्तविक उद्देश्य केँ ध्यान मे राखि आर्थिक उन्नतिक मार्ग मे अग्रसर होइछ।

भारतीय संस्कृतिक अत्यन्त आरम्भे सँ समाजक प्रत्येक नागरिक केँ अपन जीवन मे पितृऋण, ऋषिऋण तथा देवऋण सँ उऋण होयब परम आवश्यक थिक। पितृऋण मनुष्यक पारस्परिक जीवन सँ तथा ऋषिऋण एवं देवऋण सामाजिक एवं धार्मिक जीवन सँ सम्बन्धित अछि। मनुष्य वेदाध्ययन सँ ऋषिऋण, यज्ञ द्वारा देवऋण तथा संतानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण सँ मुक्त होइत अछि। धार्मिक तथा पारलौकिक दृष्टि सँ मृत पितर केँ श्राद्ध आदिक क्रिया सम्पादनक निमित्त पुत्र अत्यन्त आवश्यक बुझल जाइछ तथा माता-पिता विद्वान, धार्मिक, स्वावलम्बी, वीर एवं युद्धकलारत पुत्रक कामना करैत अछि।

ऋषिऋण स्वाध्याय द्वारा पूर्ण कएल जाइछ। वेदाध्ययन एवं ज्ञानोपार्जन कार्य मे निमग्न रहला सन्ता समाज मध्य ज्ञानक ज्योति सतत् उद्भासित होइत रहैछ जाहि सँ सम्पूर्ण समाज पूर्णरूप सँ विकसित भए उन्नत अवस्था केँ प्राप्त होइछ।

मनुष्य केँ यज्ञादि द्वारा देवऋण सँ मुक्ति भेटैछ। यज्ञक विकास त्यागक भावना सँ होइछ। देव शब्द 'दिव' धातु सँ बनैछ जकर अर्थ होइछ "चमकब"। देव शब्दक अर्थ होइछ प्रकाशयुक्त वा देदीप्यमान। अतः देव शब्द सँ आत्मिक प्रकाशक बोध होइछ। जनिक आत्मा अधिक परिष्कृत अछि हुनकहि मुँह पर एक दिव्य तेज परिलक्षित होइछ। अतएव देव शब्द सँ जोहि महान पुरुषक तात्पर्य अछि जनिका आत्म-साक्षात्कार भए गेल छैन्ह। ओ महान आत्मा उन्मार्गगामी मानव समाज केँ वाम सन्मार्ग पर पुनि आनबाक निमित्त भूमण्डल पर अवतरित होइछ। अतएव देवऋणक एहि तरहक भाव सामाजिक उन्नयनक निमित्त अनिवार्य होइछ।

पितृऋण, ऋषिऋण एवं देवऋणक सिद्धान्तक द्वारा समाज मध्य अनुशासन द्वारा वास्तविक नागरिकताक भाव केँ जागृत करैछ। एहि तीनू ऋण मे जीवनक विभिन्न अङ्ग सँ सम्बन्धित कर्तव्यक समावेश पाओल जाइछ जाहि सँ उन्मुक्त भए मनुष्यक सम्पूर्ण जीवनक विकास होइछ।

एकरेँ मनुष्य सर्वप्रथम मे एहि कर्म द्वारा जाति एवं वर्ण केँ उपेक्षा कए भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति मे अग्रसर भए समाज सँ ऊपर उठि महान पर्याप्त एवं तत्ववेत्ताक रूप मे प्रख्यात होइत अछि। मिथिलाक धर्मव्याध तेहो एहि गुण केँ पाबि समाज मध्य नितान्त प्रख्यात भए गेल छलाह।

मिथिलाक संस्कृति मध्य एहि तरहक दिग्दर्शन अनेक स्थल पर उपलब्ध होइछ। विदेह राज जनक क्षत्रिय होइतहुँ मनुमिथिलाक ज्ञाता छलाह। वाल्मीकि-रामायणक उत्तरकाण्डक सत्रहम सर्ग मे ब्रह्मवादिनी वेदवतीक उपाख्यान वर्णित अछि। वेदवती साक्षात वाङ्मयी छलीह तथा वाणीक साकार प्रतिमा हुनक समस्त गुण केँ विभूषित करैत छल। पिता ब्रह्मर्षि कुशध्वजक मृत्युक उपरान्त वेदवती मिथिला राज्य मे हिमालयक निकटस्थ एक आश्रम मे ब्रह्मचारिणीक अनुशासनपूर्ण एवं तपोमय जीवन बीतबैत छलीह। कृष्ण मृग-चर्म एवं जटा सँ युक्त ओ ऋषि सदृश सत्कार्य मे लागल रहैत छलीह। एहि विवरण सँ ज्ञात होइछ जे राजकुमारी वेदवती केँ अपन पारिवारिक परम्पराक अनुरूप एक आश्रम मे वेद एवं कर्मकाण्डक उच्चशिक्षा भेटल छल। तत्पश्चात हुनका ऋषि तुल्य पद प्राप्त भेलैन्ह।

रामायण मे अहल्याक प्रसंग मे 'न्यासभूतान्यस्ता' अर्थात् एक धरोहरिक रूप मे वर्णित अछि। कतिपय वर्षक उपरान्त अनुशासित एवं प्रशिक्षित भेलाक पश्चात हुनका हुनक अभिभावक केँ 'निर्यातिता' अर्थात आपस कए देल गेल। तदुपरान्त गौतमक चरित्र-बल तथा हुनक तपःसिद्धि सँ प्रसन्न भए ब्रह्मा अहल्या केँ हुनका पत्नीरूप मे स्वर्गलार्थ समर्पित कएल। एहि सँ प्रतीत होइछ जे मिथिला मे कन्याक शिक्षाक समुचित व्यवस्था छल तथा ओ अपन भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गुण सँ समाज मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त करैत छलीह।

एकरेँ मिथिला केँ अपन विद्या एवं बुद्धिक प्रभावें निम्न सँ निम्न योनि मे उत्पन्न व्यक्ति एवं स्त्रियो समाज मध्य समुचित स्थान प्राप्त कए प्रतिष्ठा केँ प्राप्त करैत छल।

मिथिलाक धर्मव्याध मिथिलाक परम्पराक अनुरूप गृहस्थ होइतहुँ त्यागी, पूज्य होइतहुँ धर्मज्ञ एवं तत्ववेत्ता तथा नितान्त निन्दनीय वृत्ति केँ करितहुँ समाज मध्य मान्य छलाह।

एहि कथाक मूल सँ महाभारतक वन पर्व मे वर्णित अछि किन्तु एहि मे हम स्वाभाविकता ओ रोचकता दृष्टि केँ दृष्टि मे राखि अपन इच्छा सँ कतहु कम तथा कतहु बेसी कए अपना शब्द मे लिखल अछि। अतः एहि कथा केँ अनुवाद कहब

अनुचित होएत किएक तँ अनुवाद तँ ओ कहल जाइछ जे सम्पूर्ण मूलक भावान्तर मे प्रतिपादित होइछ।

एहि कथा कें मैथिली मे लिपिबद्ध करबाक एकमात्र उद्देश्य छल जे मातृभाषा मे अपन मातृभूमि सँ सम्बन्धित विलक्षण कथा कें प्रस्तुत कए एक अभावक पूर्ति करी। तदर्थ अल्प ज्ञानक त्रुटि, भाषाक दोष, भाव ओ आन-आन तरहक दोष कें रहितहुँ कथाक अन्वित वर्णनक उत्कट लोभ अनुप्रेरित कएल। आशा करैत छी जे विद्वान लोकनि हमर अल्प विषयावति सँ भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तत्वक बुझबाक प्रयास कें नितान्त मोहात बुद्धि एकर त्रुटि दिसि ध्यान नहि दए केवल धर्मक भावने सँ कथामृतक रसास्वादन करताह।

२६-२-१९६८ ई०

—राजेश्वर झा

धर्मव्याध-कथा

भारतीय संस्कृति मध्य आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक जीवन वर्णाश्रम-व्यवस्था मे सन्निहित नहि भए व्यक्तिक ज्ञान, कर्म एवं उपासनाक प्रतिपादन मे प्रादुर्भूत होइछ जे अर्थ तथा कामक साधन कें रहितहुँ लौकिक एवं पारलौकिक उन्नतिक निमित्त थिक। एहि उदात्त भावनाक एक गोट कथा—मिथिलाक 'धर्म-व्याध-कथा' नामे महाभारत मे परिलक्षित अछि जकर कथानक एवंकमें पाओल जाइछ —

अपन बुद्धि एवं पराक्रम सँ गिरि, कानन, सिन्धु, पवन एवं अम्बर पर विजय प्राप्त करैत तप, त्याग तथा सहिष्णुता सँ दैविक, दैहिक एवं भौतिक परिताप कें सहन करैत पाँचो पाण्डव प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि, द्रौपदीक एहि छः प्रमाण सँ युक्त, श्रेष्ठ लावण्य, अलौकिक नम्रता तथा अद्भुत प्रतिष्ठा सँ परस्पर अनुरंजित होइत पत्र-फल सँ पूर्ण काम्यक वन मे प्रविष्ट भेलाह।

वन-प्रान्तक ओहि भू-भाग मे आनन्द-सुमनक मधुवर्षा, हर्ष-विहगक मधुर संगीत, तथा निवृत्ति एवं विश्वास सरिताक अविरल प्रवाह कें निरखि पाण्डव हर्षोत्फुल्ल भए विश्राम करए लगलाह।

काम्यक वन मे पाण्डवक आगमनक चर्चा विद्युतक आभा सन समस्त वन-प्रान्त मध्य प्रसारित भए गेल। परमार्थदर्शी, वीतराग एवं निरहंकार मुनि लोकनि ओतए आबि पाण्डव लोकनि कें सतत् अपन आशिर्वचन सँ कृतार्थ करैत छलाह तथा स्वाध्याय, सत्संगक वातावरण सँ हुनका लोकनिक रुचिक नित्य परिष्कार, परिमार्जन एवं संस्कार होइत रहैत छल। वस्तुतः काम्यक वनक अमावस्याक अन्धकारसन भूभाग पूर्णिमाक स्वच्छ ज्योत्स्नाक रूप मे परिणत भए गेल।

पाण्डवक आगमनक सूचना कें पाबि भगवान कृष्णक आनन पर अनादि प्रेमक अनन्त सुख एवं अद्भुत ज्योतिक आभा प्रस्फुटित भए गेल। ओ स्नेह सँ आतुर भए सत्यभामाक संग सत्वर हुनका लोकनिक जिज्ञासार्थ काम्यक वन कें प्रस्थान कएल। कृष्ण कें देखितहिं पाण्डवक सभ व्यथा सुखमाक निमित्त अन्तर्धान भए गेल तथा ओ लोकनि सभ संताप कें बिसरि प्रस्फुटित कमल सन

प्रमुदित प्रतीत भेलाह। कुशलोपरान्त आनत पारस्परिक वार्त्तालाप होइतहि छल ताहतहि अपन निर्मल कान्ति सँ समस्त दिशा केँ उद्भासित एवं तपस्तेज सँ समस्त लोक केँ विस्मित करैत रूप एवं गुण मे श्रेष्ठ महान् तेजस्वी मार्कण्डेय मुनिक पदार्पण भेल। पाद्य, अर्घ्य, आसन, फल आदि सँ विविध प्रकारे मुनिक सत्कारक उपरान्त धर्मराज युधिष्ठिर नितान्त विनम्र भए मुनिक अनुनय करैत निवेदन कएल—"हे तात! समय पाबि मनुष्यक दुःखाग्नि सँ शान्त भए जाइछ किन्तु सागरक बड़वानल सँ सतत् तकरो बनल रहैछ। तुरा स्वर्ग भेला सँ पर्याप्त पुरुषकारेछ किन्तु अतुल विक्रमक दैविक कोनो परिणाम नहि भए ओ बुद्धिक प्रमाद एवं भ्रान्ति मे परिवर्त्तित भए रहल अछि।"

धर्मराजक एतबकमक वचन केँ सुनि मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त मृदुस्वर मे कहलाह—"हे धर्मराज! उत्तम पुरुष सिंह एवं चालक सन अपन मानक रक्षा प्राणहु सँ अधिक बुझैत अछि तथा चन्द्रमा सन स्वतः अपनहि प्रभा सँ शोभायमान होइत अछि। जीवमात्र ओतहि जाइछ जतए ओकरा आनन्दक उद्रेक होइछ किन्तु ओकर उद्रेकक भावना सर्वथा भिन्न होइछ। खद्योत केँ चमकि-चमकि तुकेबा मे आनन्दक उपलब्धि होइछ तथा शलभ केँ परोपकार निमित्त अपना केँ अन्त करबहि मे आनन्दोत्सव होइछ। तेँ को दुहुक समान मर्यादा छैक?"

मार्कण्डेय मुनिक एतबकमक उक्ति केँ सुनि धर्मराज युधिष्ठिर जिज्ञासा करैत पुनि कहलाह—"हे भगवन्! मनुष्यमात्र केँ कर्मानुसार फल प्राप्ति होइछ तथा बुद्धि सेहो कर्मानुसारे होइछ। तदर्थ मनुष्यक जन्म-मरण, सुख-दुख, संकल्प-विकल्प आदि सँ सम्बन्ध पुराकृत पुण्यकर्मा अवश्यक उत्कण्ठा अछि। हे प्रभु! हमरा लोकनिक एहि अतुल कामना केँ अपन तपस्याक फल सँ पूर्ण करबाक कष्ट करी।"

धर्मराजक एहि अनुनय सँ प्रसन्न होइत मार्कण्डेय मुनि अनेक कथा केँ कहल आदि मे प्रसंगवशात् इहो कथा कहल गेल छल—

कौशिक एवं पतिव्रताक उपाख्यान

ब्रह्मतेज एवं तपस्तेज सँ देदीप्यमान तथा लोकोत्तर ज्ञानक आलोक सँ उद्दीप्त महात्मा कौशिक एक दिन एक वृक्षक तलीए तपश्चरण मे निरत छलाह। एहि

अनन्तर एक अविनीत बगुला जे वृक्षक एक शाखा पर बैठल छल हुनका ऊपर खटक कए देल। बगुलाक दुष्कृत कौशिकक क्रोधानिल कें भड़का देल। हुनकर नेत्र सँ अग्निक ज्वाला प्रस्फुटित होमय लागल। फलस्वरूप बगुला अपन कृतक फल कें प्राप्त कए धरातल पर खसि पड़ल तथा ओकर प्राण तत्काल विमुक्त भए गेल।

बगुलाक एवंक्रमक दशा कें देखि कोमलताक प्रतिमूर्त्ति कौशिक दया सँ द्रवीभूत भए पश्चात्ताप करैत भिक्षाटन निमित्त एक ग्राम मे गेलाह। ग्रामक एक गृहस्थक गृह जाए भिक्षाक याचना कएल। नेत्रक चपल कोर, विलासक भार सँ मन्थर गति एवं मनोरम मुखमण्डल सँ युक्त गृहस्थ पत्नी मूर्त्तिमती स्मृति सन अतिथि अभ्यर्थी पथक अनुसरण करैत सरसवाणी मे कहलथिन—"हे तापस! भिक्षाक पात्र कें माँजि शीघ्रे भिक्षा दए रहल छी। अतः कनेक विलम्ब तँ जाउ!"

गृहस्थ पत्नीक आश्वासन कें पाबि कौशिक विलंब गेलाह तथा उदयोन्मुख बन्धुक आनन सँ शोभित मधुरामिनक संग शुभ्र कुसुम वसन परिहिता परमित भूषण सँ ना ओ सौन्दर्यक रहस्यमयी चिन्तना मे निमग्न भए विरक्ति, निवृत्ति एवं आसक्तिक विश्लेषण मे परिध्यान भए गेलाह। एहि अनन्तर गृहपतिक गृह मे पदार्पण भेल जे कतहु अन्यत्र गेल छलाह। गृहस्थ-पत्नी अपन पति कें देखि पाद्य, अर्घ्य, भोजन आदि सँ हुनक तुष्टि मे निरत भए भिक्षाक मुद्रि बिसरि गेलथिन। दिनान्तक उपरान्त सूर्यक तेज निहित भेला सँ जेना हुताशन अधिक प्रदीप्त होइछ तहिना जेना जेना विलम्ब होइत जाइत छल कौशिकक क्रोधानिल भभकैत छल। अन्ततोगत्वा ओ नितान्त उग्र भए कहलाह—"हे भाग्यी! की अहाँ धर्मक मर्म कें नहि जनैत छी जे अकरा गृह सँ अभ्यर्थित अतिथि विमुख भए प्रत्यागमन करैछ ओकर गृह सँ देवता एवं पितर सभ पराङ्मुख भए जाइछ! हँ अहाँ कें भीख नहिए देबाक छल तँ आश्वासन किएक देलौंह! की अहाँ कें हमर तपश्चरणक प्रभाव बुझल अछि?"

कौशिकक एवंक्रमक वाक्युक्त वचन कें सुनि गृहस्थ पत्नी विनुमैत कहलथिन—"हे तापस! इन्द्रिय सुख तथा मोक्ष दुहु भिन्न-भिन्न मार्ग थिक। विषय-भोग कें परित्याग सँ जे विषय वासना एवं भोग भाव नहि छूटैछ तँ विविध प्रकारक वेष तथा वेन्ह कें धारण सँ कोन लाभ भए सकैछ? केवल ज्ञाने सँ मोक्षक उपलब्धि नहि होइछ। एहि हेतु कर्महु अनिवार्य होइछ। पति अर्चना मे निमग्न

रहला सन्ता अहाँ के भिक्षा मे विलम्ब भेल। अतएव अहाँ हे क्षमा याचना करैत छी।"

गृहस्थ-पत्नीक एहि कथा के सुनि कौशिकक क्रोधानल अधिक उग्र भए गेल तथा ओ सत्वर बजलाह —"हे स्त्री! अहाँ गृहस्थ धर्म मे रहि ब्राह्मणक अनादर करैत छी। एहि जगतक सेमल इन्द्रधनुषक सदृश क्षणमात्रे मे नष्ट भए जाइछ, लावण्य एवं वर्ण अस्थायी होइछ तथा यौवन कदलीदलगत जल सन विगलित भए जाइछ। मनुष्यमात्रक कोन कथा देवगणहु के तापसक भय होइछ। क अहाँ नहि जनैत छी जे ब्राह्मण अग्निवत् दहन क्षमि अनिकर रूप सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो के भस्मीभूत कए सकैछ।"

कौशिकक वचन के सुनि गृहस्थ पत्नी अत्यन्त विमन भए कहए लगलीह—"हे तपस्वी! की अहाँ हमरा बगुला बुझैत छी? अहाँक क्रोध हमर कोनहुटा अपकार नहि कए सकैछ। देवतुल्य ब्राह्मणक हम अनादर नहि करैत छी। हम हुनक तेज एवं महत्व सँ पूर्ण अवगत छी। हुनकर अन्तस्थल मे अत्यन्त क्रोधक संग अपार क्षमा-गुण सेहो सन्निहित रहैछ। हे द्विज! जीवन कर्म प्रधान तथा फल कर्मक पराकाष्ठा थिक। कर्म, विकर्म एवं अपकर्म एकहि आरोहणक सोपान थिक। फलक आशा सँ जे कर्म कएल जाइछ तँ ओ बन्धन भए जाइछ किन्तु जे मनुष्यक अन्तस्थल मे कर्म व्याप्त भए जाइछ तँ फलक कामना नहि करैछ। एहि स्थिति मे कर्म मनुष्यक धर्म बनि जाइछ। नारीमात्रक जीवनक आन-उकाप मधुपूर्ण हृदय थिक। गार्हस्थ्य जीवन सँ तखनहि साफल्य होइछ जखन नर नारी दुहु अभिन्न भए एकहि वृन्त पर विकसित दुइ फूल सन सतत् प्रमुदित रहैछ। हे ब्राह्मण! हम पतिव्रता छी। पतिव्रता नारी पतिक चरण के निहारैत पति सेवे के सर्वोपरि धर्म बुझैत अछि। पतिव्रता स्त्री अपन पतिए के सम सँ पैघ देवता बुझैत अछि। तदर्थ हमहुँ एहि रूपे आचरण करैत छी। हे भगवन! पतिक सेवाक प्रसादात् गृहमध्य रहितहुँ हम बगुलाक दशा सँ अवगत भए गेलहुँ। हे ब्राह्मण! क्रोध महापाप थिक। जितेन्द्रिय धर्मनिष्ठ, स्वाध्याय निरत, पवित्र हृदय भए जे काम एवं क्रोध के जीतैछ आकरहि ब्राह्मण कहल जाइछ। स्वाध्याय, क्रोधत्याग, एवं इन्द्रियदमनहि तँ ब्राह्मणक सम्पत्ति थिक। धर्मोन्मुख सत्य एवं सरलताहि के परम धर्म कहैछ। सनातन धर्म के जानब तँ नितान्त महान थिक किन्तु ई तँ सर्वमान्य थिक जे जो धर्म सत्यहि मे सन्निहित अछि। वस्तुतः अहाँ धर्मात्मा, स्वाध्याय निरत एवं राग द्वेष रहित तँ भए गेल छी, किन्तु धर्मक

वास्तविक तत्त्वक ज्ञान सँ अज्ञानहु अहाँ पराङ्मुख छी। हे विप्र! जँ अहाँ जिज्ञासु छी तँ मिथिलापुरी मे जाए धर्मव्याध सँ धर्मक तत्त्वक जिज्ञासा करी।"

गृहस्थ-पत्नीक एहि उत्तर कें सुनि निन्दा-प्रशंसा सँ अविचलित, सूर्यक प्रखर प्रकाश मे दीप सन मलीन एवं निस्तेज भए कौशिक अत्यन्त मृदुस्वर मे बजलाह—"हे भामिनी! विमल कुल, सुन्दर शरीर, विशुद्ध बुद्धि, विपुल बल, अपार समृद्धि एवं अखण्ड प्रभुता कें पाबि मनुष्य मात्रक बुद्धि भ्रान्त भए जाइछ किन्तु ई तँ अहाँक हेतु संयम भए गेल अछि। संगति सँ साधारणतः भय उत्पन्न होइछ और गृहस्थी सँ राग किन्तु अहाँ सांसारिक अवस्था मे रहितहु क्रोधि सँ विमुख एवं तृष्णा तथा लोलुपता सँ रहित भए पुण्य एवं पापक संचय नहि करैत छी। वस्तुतः जाबत मनुष्य कें ब्रह्मक ज्ञान नहि होइछ ताबत आत्मज्ञान नहि भए सकैछ। तदर्थ हे शुभरूपिणी! अहाँक कल्याण हो। हमर आब सम क्रोध शान्त भए गेल तथा हम अहाँ पर बड़ प्रसन्न भेलहुँ। अहाँक कठोर सत्य कें सुनि हमर मोहक अवगुण्ठन सर्वदाक निमित्त हटि गेल। अतः आब हम एहि स्थान सँ प्रस्थान करैत छी।"

गृहस्थ-पत्नी सँ एतबामे कहि महात्मा कौशिक ओतए सँ प्रस्थान तँ कएलनि किन्तु हुनक मन-मानस सतत् विचारक तरंग सँ उद्वेलित होइत छल। कौशिक तँ ओ क्रोधि पतिव्रताक प्रशंसा करैत छलाह तथा कौशिक स्वयं अपनहि कें अपराधी बुझि आत्मग्लानि सँ अपना कें धिक्कारैत छलाह। एतबामे आनन्द एवं अभिशापक ग्लानि मध्य उल्लसित एवं व्यथित होइत धर्मक तत्त्वक अन्वेषण मे ओ मिथिलाक यात्रा कएलनि।

कौशिक तथा धर्मव्याधक वार्त्ता

अनेक नगर, ग्राम एवं सघन वनक यात्राक उपरान्त कौशिक राजा जनकक दिव्य नगरी मिथिला मे प्रविष्ट भेलाह। भरत क्षेत्र मे प्रसिद्ध 'मिथिला' अत्यधिक मनोहर भेला सँ प्रतीत होइत छल जे ब्रह्मा इन्द्रक अलका सँ एहाँ कए जेना अपर स्वर्गक निर्माण कएने होथि। मिथिलाक भूभाग अत्यधिक धान्य सम्पत्ति सँ पूर्ण एवं चिन्तित वस्तु देबाक निमित्त चिन्तामणि सदृश आरम्भशाली मध्य सतकण्डा भवनक शुभ्र शिखर हिमालयक शिखर कें तिरस्कृत एवं राजभवनक उच्च शिखर पर स्थापित स्वर्ण कलश देवरमणीक भालपर आरोपित पीयर टीप सन शोभनीय प्रतीत होइत छल।

मिथिलाक नागरिकक लक्ष्मी वाणिज्यक निमित्त, चित्तवृत्ति धार्मिक कर्तव्य पालनक निमित्त, एवं अतिथि-सत्कारक निमित्त तथा विद्याभ्यास आदि गुणक उपार्जन विनयशीलताक निमित्त पाठशाला जाइत छल।

राजा जनक वेद कर्ता विद्वान सँ सम्मानित एवं नारायणा सदृश पराक्रमी छलाह जनिकर कीर्ति देवलोकहु तक पसरि गेल छल तथा जो इन्द्र सन प्रतापी छलाह। राजा जनकक प्रकृति चारु पुरुषार्थक परिपालन में तत्पर, आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति एहि चारि विद्याक पारदर्शी विद्वान मध्य श्रेष्ठ, चारि सिद्धान्तक ज्ञाता तथा कीर्ति चारि समुद्र मध्य विख्यात छलैन्ह।

एहि नगरी में नित्य उत्तम एवं यज्ञ यागक आहुति सँ नभमण्डल सुवासित रहैत छल। नगरक श्री जा शोभा कें देखि कौशिक कृतार्थ भए प्रजाक सँ आदि धर्मव्याधक प्रदेश में विहरि गएल।

नाना लोकनि सँ धर्मव्याधक पता पुछि कौशिक ओहि स्थान में पहुँचलाह जतए पशु हत्या होइत छल। धर्मव्याध कें मेला, मृग आदिक माँस बेचैत देखि कौशिक अति विस्मित भए एक काल में स्तब्ध भए ठाढ़ रहलाह। एक दिशि सँ व्याध गंभीर ज्ञान में प्रावीण्य वेद सन तथा अति उत्तम काल सँ देव सन प्रतीत होइत छलाह और दोसर दिशि हुनक निम्न कर्म देखि कौशिक कें अत्यन्त क्षोभ भेलैन्ह। जाबत ओ बजबाक उपक्रम करितहि छलाह ताबतहि व्याध हुनकर समक्ष आबि नितान्त विनम्र भए कहलाह—"हे भगवन! कुशल तँ छी? हमही जा व्याध छी अकरा आगए अहाँ कें जा पतिव्रता पठौलैन्ह अछि। हे तापस! अहाँक मनोभाव सँ हम अवगत छी किन्तु ई स्थान अहाँक उपयुक्त नहि अछि। तदर्थ तँ कृपा दृष्टि हमर एहि कलवाक कए करी।"

धर्मव्याधक एतबामात्र उक्ति सँ कौशिक कें बड़ आश्चर्य भेलैन्ह। शास्त्र ज्ञाता, नीति निपुण, सत्यनिष्ठ एवं शिष्टाचार सम्पन्न सन्त, अतिनिन्दनीय कर्मक सम्पादन हुनकर अन्तःकरण में विचारक भूंजा उत्पन्न कए देल अकर प्रवाह में ओ बहए लगलाह।

धर्मव्याधक आग्रह कें जा सहर्ष स्वीकार कए हुनक गन्तव्य भवन में अएलाह तथा व्याधक देल आसन, पाद्य, अर्घ्य आदि कें आनन्दपूर्वक ग्रहण कएलैन्ह।

एहिरूपे व्याध द्वारा सत्कारित भेलाक उपरान्त कौशिक व्याध सँ पूछल—"हे सौम्य! सत्य, दान, कर्मठता, क्षमा, पराक्रम, दान, नीतिपरायणता आदि

समग्र गुण अहाँ मे विराजमान अछि तथा आत्मपुरुष सूर्य प्रभृति महान पुरुष निन्दनीय कर्म कदापि नहि करैत छथि तथापि अहाँ एहि कर्म कें किएक अपनौने छिऐक ?"

कौशिकक एहि वचन कें सुनि व्याध घृणा, ग्लानि, भय, मोह सँ रहित भए अति मृदुस्वर मे कहलाह— हे ब्राह्मण ! पैन मे रान्धल मदिरा सँ पैसल कोन सम्बन्ध रहैत छैक ? जकरा श्रुति प्रामाण्य मे विश्वास रहैछ आचरहि कर्म मे निष्ठा रहैछ आदि सँ चित्तशुद्धि होइछ। चित्तशुद्धिक बिना परमात्माक ज्ञान होएब दुर्लभ थिक। जे पुरुष प्रकृति सँ पृथक आत्मस्वरूप मे स्थित अछि ओकरा देहि मे तत् सँ पृथक कोनो वस्तु नहि होइछ। अतएव बुद्धिए जकर उपाधि थिक एहेन जो सर्वसाक्षी आत्मा द्वारा कृत कर्म सँ थोड़बाक लिप्त नहि होइछ किएक तँ ओ असङ्ग थिक।"

तदुपरान्त हे भगवन ! हे हमर कुलोचित धर्म थिक। विधाता हमरा एहि कुल मे उत्पन्न कए जे कर्म हमरा निमित्त नियत कएल तकर विधिवत् सम्पादन करैत अपन माता पिताक सेवा, देवता, अतिथि एवं सेवक कें भोजन कराए स्वतः भोजन करैत छी तथा यथाशक्ति दान एवं सत्यक आचरण करैत छी। हे विप्र ! पूर्वकृत कर्मक अनुसार कर्ता कें फलक प्राप्ति होइत छैक।

हे तापस ! राजा जनकक राज्य मे किओ एहेन नहि अछि जे अपन कुलोचित कर्म कें छोड़ि दोसर वर्जक कार्य कें करैत अछि। दुराचारी एवं दण्ड योग्य अपन पुत्रहु कें राजर्षि जनक क्षमा प्रदान तथा धर्मात्मा शत्रुओ कें पीड़ित नहि करैत छथि। ओ लक्ष्मी, राज्य और दण्ड मे धर्मक व्यवहार रखैत छथि।

हम ने तँ पशु हत्या करैत छी आ ने स्वतः मांस भक्षण करैत छी। हम दोसराक द्वारा आहत कएल पशुक मांस बिक्री करैत छी। दुश्चरित्र मेलहु पुरुष सच्चरित्र तथा प्राणिमात्रक हिंसा मे तत्पर पुरुष धर्मात्मा भए सकैत अछि।

हम अपन प्रशंसक एवं निन्दक दुहु कें समान भाव सँ व्यवहार करैत छी। सहनशीलता, धर्म मे विश्वास, आतिथ्य सत्कार, अपन आत्मा सन सभ प्राणी कें मानब आदि गुण केवल त्याग गुणक आश्रित अछि। पापी लोहारक भट्ठी सन भीतर अंगार होइतहु बाहर सँ मलिन प्रतीत होइछ। अहंकारी मूढ़क प्रत्येक बात निस्सार होइछ। सूर्य जेना दिन कें प्रकट करैछ तहिना ओकर अन्तरात्मा यथार्थ रूप कें प्रकट करैछ। विद्वान् ने त अपन प्रशंसा करैछ आ ने दोसराक निन्दा। एहि संसार मे सर्वगुण सम्पन्न समाजक बीच प्रतिष्ठा प्राप्त करब दुर्लभ थिक। अप-

धर्मक दोष मेला पर पश्चात्ताप करला सँ ओकर प्रायश्चित भए जाइछ। जे श्रद्धापूर्वक स्वार्थरहित परोपकार मे निरत रहैछ ओ वस्तुतः धन्य मानल जाइछ। दुर्गोदयक उपरान्त जेना अन्धकारक अन्तर्धान भए जाइछ तहिना धर्माचरण सँ पूर्वकृत सम्पूर्ण पाप विनष्ट भए जाइछ। हे द्विज श्रेष्ठ! लोभ सभ पापक मूल थिक। सदर्थ विद्वान एहि सँ सर्वथा पृथक रहैत छथि। जे शास्त्रक मर्म केँ पूर्णरूप सँ नहि बुझि सकल ओ पाप पात सँ सर्वथा कृष्ण तन सधर्मी अपन ज्ञान केँ क्रोधि पालयहक प्रदर्शन करैछ। बाहर सँ यद्यपि ओ जितेन्द्रिय एवं पवित्र प्रतीत होइछ तथा धार्मिक विषयक आडम्बर आ सेहो पूर्णरूप सँ करैछ किन्तु ओकर हृदय एवं कर्म मे शिष्टाचारक अंश मात्रो धरि नहि रहैछ।"

धर्मव्याधक एहि प्रत्युत्तर केँ सुनि कौशिक हर्षित भए पुनि आग्रहपूर्वक पूछल—"हे पुरुष श्रेष्ठ! शिष्टाचार की थिक? एहि प्रसंग मे अहाँ हमरा समिस्तर कहू।"

कौशिकक उत्सुकता केँ जानि व्याध मौन एवं बाकी बुद्धि मे विनम्र होइत एकरकेँ बजलाह—"हे द्विजवर! यज्ञ, दान, तप, वेद एवं सत्य ई पाँचो शिष्टाचारक पवित्र साधन थिक। श्रेष्ठ पुरुषक सम्मति मे शिष्ट व्यक्ति काम, क्रोध, दम्भ, लोभ एवं कठोरता केँ त्यागि अपन धर्म मे संतोष करैत छथि। यज्ञ तथा स्वाध्याय केनहार शिष्ट पुरुष दोसर आचरण नहि करैत छथि। आचारक पालनो शिष्टक अंगुण थिक। गुरुवर्गक सेवा, सत्य, क्रोध इन्द्रिय तथा दानक गुणो शिष्टाचार मध्य दाइछ। वेदक सार सत्य, सत्यक सार इन्द्रिय दमन, तथा दमनक सार त्याग थिक। ई तीनू शिष्टाचार मे अछि। जे अमरदश धर्म केँ ईश्वरीय दृष्टि सँ देखैछ आदि कुमार्गीक प्रचारो विपत्ति मे पड़ैछ किन्तु जे शिष्ट, त्यागी, वेदपाठी, स्वामी, धर्मक मार्गपर चलनिहार, सत्य धर्म मे अनुरक्त तथा गुरु सँ धर्मोपदेशित लोकस्थिति सँ धर्म अर्थ केँ निर्णय केनहार छथि आदि सदाचारी धर्मात्मा केँ अपन बुद्धिक नियामक बुझबाक चाही।

हे कौशिक! ई शरीर एक सरिता थिक। एहि मे काम, क्रोध, लोभ आदि मगरक निवास अछि। अलक स्थान पर एहि मे नेत्रादि पञ्च इन्द्रिय अछि। पुनर्जन्म एकर दुर्गम स्थान थिक। धैर्यक नाव सँ एहि सरिता केँ पार कएल जाइछ। अहिंसा परम धर्म थिक। एकर स्थिति सत्य मे रहैछ। सभ प्रकृति सत्यक आश्रय मे अपन निर्धारित कार्य केँ करैछ। सज्जनक आचारहि धर्म तथा आचारहि हुनक लक्षण थिक।

हे भगवन् ! अकर जेहन स्वभाव होइछ ओ ओहो अनुसार चलैत अछि। शिष्ट पदक चिह्न जे न्यायसंगत कार्य धर्म तथा आचारक प्रतिकूल कार्य अधर्म चिह्न। जे शिष्टाचार कें मानैछ ओ क्रोध एवं ईर्ष्या सँ रहित, अहंकार एवं अन्तर सँ शून्य, सरल, शान्त, वेदविहित, यज्ञ आदि कर्म कें केनिहार, पवित्र हृदय, सच्चरित्र, उदार, जितेन्द्रिय तथा गुरु सेवा मे तत्पर रहैछ। ओकर हृदय दुर्बल नहि होइछ। ओकर आचार एवं कर्म दोसराक हेतु दुष्कर होइछ तथा निजकृत कर्म सँ ओ सर्वदा सन्तोष प्राप्त करैछ। ओकर हिंसा आदि कर्मक दोष स्वतः नष्ट भए जाइछ। ज्ञानी न्यायानुसार धर्मक आचरण कए स्वर्गारोहण करैछ। आस्तिक, अहंकार रहित, ब्राह्मणक आदर केनिहार, शास्त्रक ज्ञाता एवं सच्चरित्रे कें स्वर्ग मे स्थान प्राप्त होइछ। वेदोक्त, शास्त्रोक्त एवं शिष्ट जन द्वारा आचारित ई तीनू धर्मक लक्षण थिक। सब विद्याक अध्ययन, सब तीर्थ मे स्नान, क्षमा, सत्य, सरलता एवं शौच शिष्टाचारक लक्षण थिक। जे अहिंसा पराधर्म कए प्राणीमात्र पर दया रखैछ, कखनहु कठोर वचन नहि कहैछ, जे सबक प्रिय काज करैछ, शुभाशुभ कर्मक फल-सञ्चय सँ सम्बन्ध रखनिहार परिणाम कें विशेष रूप सँ जानैछ न्यायपरायण, समदर्शी शुभेच्छुक, सत्यवादी, सत्यपथगामी, दीनपालक, तपस्वी तथा श्रेष्ठ विद्याधन कें छोड़ि अन्य धन कें तिरस्कार करैछ आकाहि शिष्ट व्यक्ति कहल जाइछ।

दान देब, सत्य भाषण तथा निर्द्वेष सँ ई तीन आचरण ई तीनू सज्जनक साधारण लक्षण थिक। ईर्ष्याक परित्याग, क्षमा, शान्ति, सन्तोष, प्रियवचन, काम एवं क्रोधक त्याग, शास्त्रानुकूल कर्म सभसँ स्वाभाविक गुण थिक। शिष्ट जन नित्य धर्मक आचरण करैत शिष्टाचारक श्रेष्ठ मार्गक अनुसरण करैत, प्रज्ञा सँ लोकाचारक समीक्षा करैत पाप पुण्यक निर्णय करैछ तथा अन्त मे संसार-भय सँ मुक्ति प्राप्त करैत अछि।

हिंसाक प्रसंग मे धर्मव्याधक उपदेश

हे द्विज श्रेष्ठ ! हमरा जे कुकर्म छल से अहाँक समक्ष शिष्टाचारक प्रसंग मे उल्लेख कएल तथापि हमर माँस विक्रीक जे धंधा थिक से वस्तुतः बड़ निकृष्ट थिक किन्तु दैव तँ बड़ प्रबल छथि। पूर्व जन्मोपार्जित कर्मक फल अवश्य भोगए पड़ैछ। हमहूँ पूर्वजन्मक कृत पापक फल तँ भोगि रहल छी किन्तु हमरालोकनि निमित्त-मात्र छी। विधाता अकर अलंघ्य मृत्यु लिखलथिन्ह तखनहि घातक ओकरा मारैछ तथा हम ओकर माँस कें बेचैत छी। हे ब्राह्मण ! श्रुति मे लिखल अछि जे जल,

लता, पशु, पक्षी एवं मृग हैं तम अन्न तन मनुष्यक आहार थिक। पुनि हमरा लोकनि आदि पशु कें मारि ओकर मांस केनेत छी ओकरो देवता, अतिथि, मृत्यु तथा पितरक पूजा एवं भोजन निमित्त उपयोग कएला सं धर्मक मार्ग उपलब्ध होइत। भूमि मे जनिक कें मांसकाम अर्थात् मांसाहारी लिप्सा नेल अछि। ब्राह्मण यज्ञ मे आदि पशुक वध करैत छथि आ पशुओ मन्त्रबल सं स्वर्गलोक मे जाइत। हे पिता! जे यज्ञ संपादक अग्निदेव मांसप्रिय नहि होइतथि तं किओ व्यक्ति मांस नहि खाइत। जेना ऋतुकाल मे अपन स्त्रीक सेवन सं ब्राह्मणक ब्रह्मचर्य खंडित नहि होइत तहिना यज्ञ मे वा अन्य समय देवता पितर कें अर्पण कए शेष मांसक भक्षण पाप नहि थिक। पूर्वक कर्मक फल जानि एहि वृत्ति सं अपन जीविका चलाए रहल छी। शास्त्रकारक मत थिक जे अपन धंधा कें छोड़ला सं अधर्म तथा ओकर संपादन सं पुण्य प्राप्त होइत। अपन कुल कर्म कें जेहि कष्टमयो नहि छोड़ि सकैत। विधाता कर्म निर्णय मे एहि तरहें अनेक विधि कें प्रतिपादन कएलनि अछि। जकर कुल कर्म क्रूर थिक ओकरा लोचवाक चाही जे कोना ओकर उद्धार हो तथा कोना आदि निन्दनीय कर्म सं मुक्ति प्राप्त होइत। हे ब्राह्मण! हम एहि क्रूर कर्म कें करितहु अभिमान एवं अतिवाद सं बचि सर्वदा दान, सत्य वचन, सुखजनक सेवा तथा धर्म मे निरत रहैत छी।

लोक सेवी कें श्रेष्ठ कर्म बुझैत अछि किन्तु ओहि मे एक दोष हिंसा होइत। खेत जोतबा काल पृथ्वी मे रहनिहार अनेक प्राणीक हत्या होइत; धान आदि कें काटबा काल आदि अन्य रहनिहार जीवक मृत्यु भए जाइत। मनुष्य जे चलैत तं पएरक नीचा दबि कतेको जीव निरह भए जाइत। अतएव हिंसा सं के बचल अछि! विशेष रूप सं विचारला पर प्रतीत होइत जे अहिंसा केनहार व्यक्ति जगत मध्य अत्यन्त दुर्लभ अछि। विशिष्ट कुलोत्पन्न व्यक्ति निम्न कर्मक कएला पर लज्जित नहि होइत छथि। हे द्विजश्रेष्ठ! जगत मे अनेक विपरीत रीतिक समक्ष धर्म एवं अधर्मक प्रसंग मे बड़ कमेल अछि। एहि परिस्थिति मे हमर अपन मत थिक जे जे अपन कुलोचित कर्म कें संपादन मे दत्तचित्त रहैत ओ वस्तुतः श्रेष्ठ यशक भागी बनैत।"

धर्मक महात्म्यक वर्णन

धर्मव्याधक एवंप्रकार उत्तर कें सुनि हर्ष सं उत्फुल्ल भए कौशिक पुनि निवेदन करैत कहलाह—"हे ज्ञानी! अज्ञान कें हटला सं ज्ञानक आभा उदित होइत जकर समता मे सं दिनमणिक आभा सं होइत आ ने चन्द्रक ज्योत्स्ना सं।

परमेश्वरक जो दिव्य रूप अविनाशी रूप थिक ताहि सँ सनातन ज्ञानक अवतरण होइछ। जहाँ ज्योति रूप कें प्राप्त करैत छी। अतएव धर्मक महात्म्यक प्रसंग मे उपदेश दए हमरा कृतार्थ करू।"

कौशिकक एहि निवेदन पर धर्मस्वाध कहए लगलाह—"हे कौशिक! धर्मक गति अत्यन्त सूक्ष्म तथा जीवन अनन्त शास्त्रा अछि। प्राणसंकट एवं विवाहक समय झूठ बाजला सँ पाप नहि होइछ। एहि स्थान मे सत्य बाजले सँ झूठक पाप होइछ तथा झूठ बाजला सँ सत्यक पुण्य। तात्पर्य जे ताहि सँ सर्वसाधारणक कल्याण होइछ तथा सत्य थिक। अतएव धर्मक सेहन सूक्ष्म गति अछि जे अधर्मो कखनु धर्म भए जाइछ।

हे ब्राह्मण! मनुष्य शुभ वा अशुभ जे कार्य करैछ ओकर फलाफल ओकरा अवश्य प्राप्त होइछ किन्तु मूढ़ अनिष्ट फल कें प्राप्ति सँ देवताक निन्दा करैछ। मूढ़, कपटी तथा चञ्चल व्यक्ति अपना कें दोष नहि दए कर्मफलक दोष देवता कें देइछ। जँ पुरुषक कर्मफल स्वाधीन होइत तँ लोक अपन पौरुषक प्रसादात् इच्छानुसार कर्म फल कें प्राप्त करैत। तदर्थ पूर्वकृत कर्मक अनुसार एहि जन्म मे संयमी, निपुण एवं बुद्धिमान पुरुषहु कें विपरीत फल प्राप्त होइछ। लोक पुत्र कामना सँ देवताक आराधना करैछ किन्तु पुत्र कुलक कलंक बनि जाइछ। मनुष्यक शरीर मध्य जे रोग पाओल जाइछ ओकरहु कारण कर्म थिक। नाना प्रकारक भोग्य सामग्री कें रहितहु पूर्व कर्मक कारणे लोक उपभोग नहि कए सकैछ। पराक्रम एवं ऐश्वर्य सम्पन्न रहितहु लोक क्लेश प्राप्त करैछ तथा नाना प्रकारक चिन्ता मे सतत् निमग्न रहैछ। जँ लोक स्वाधीन रहैत तँ दैवाधीन नहि भए किओ मृत्यु कें नहि प्राप्त करैत। सभ सतत् सबदे रहि अपन कामनाक कें पूर्ण करैत।

एकें नक्षत्र मे अनेक व्यक्ति जन्म ग्रहण करैछ, अपन इहलौकिक निमित्त एकें संग कार्यक अनुष्ठान करैछ किन्तु कार्य सिद्धि मे बड़ अन्तर देखल जाइछ। कौशल बिना कर्मोक कार्य सम्पन्न भए जाइछ। हे द्विज! श्रुति मे कहल गेल अछि जे प्राणोमाधक शरीर अनित्य एवं जीव नित्य थिक। अतएव शरीरक वध कखनहु रक्षा नहि होइछ तथा जीव कर्मबन्धन मे आबद्ध भेला सन्ता कर्मफल भोगबाक हेतु अन्य शरीर मे प्रविष्ट होइछ।"

मृदु सिकता सँ पूर्ण गंभीर समुद्र सँ परिवेष्टित विशाल पृथ्वी सन धर्मस्वाधक हे कथन कें सुनि कौशिक नितान्त हर्षित भए कहलाह—"हे धर्मज्ञ! जीव केना स्थ थिक? हमरा विस्तारपूर्वक कहू।"

कौशिकक एहि आग्रह कें सुनि व्याध निशान्त विनम्र भए पुनि कहब प्रारम्भ कएल—"हे ब्राह्मण ! लोक मे दुर्भेद्य मे शरीरक विनाश सँ जीवक नाश भए जाइछ से मिथ्या थिक। जीव एक शरीर कें छोड़ि दोसर मे प्रविष्ट होइछ। मनुष्य अपन कृतकर्मक फल कें भोगैत अछि। अतएव एक देह सँ जे किछु शुभ वा अशुभ कर्म मनुष्य करैछ ओकर फलाफल ओ दोसर शरीर मे भोगैछ। जीव अपन कर्मानुसार पुनर्जन्मग्रहण करैछ। जे पुण्य कर्म कें करैछ ओ श्रेष्ठ एवं यशस्वी तथा जे पापकर्म कें करैछ ओ नीच एवं नराधम होइछ।"

धर्मव्याधक एहि उक्ति कें सुनि कौशिक निस्सीम गर्वक अनुभव करैत आन्तरिक आनन्दोल्लास मे प्रवाहित होइत पुनि निवेदन करैत बजलाह—"हे धर्मज्ञ ! जीव पुण्य योनि एवं पाप योनि मे कोना जाइछ तथा ऊँच एवं निम्न जाति मे कोना जन्म लैत अछि ? एहि प्रसङ्ग हमर उत्कण्ठा कें अहाँ निवृत्त करू।"

कौशिकक निवेदन कें सुनि व्याध एकर्में कहब प्रारम्भ कएल—"हे तपस्वी ! संस्कारजनी पूर्वजन्मक कर्मफले पुनर्जन्मक कारण स्वरूप थिक। जीव ओहि कर्मबीजक संग पुनर्जन्म ग्रहण करैछ। शुभकर्मक प्रभावात देवयोनि तथा शुभ एवं अशुभ दुहु कर्मक फल सँ मानव योनिक प्राप्ति होइछ। मात्र तमोगुण कर्म फलला सँ पशुपक्षी आदिक निकृष्ट योनि प्राप्त होइछ। पाप पातक फल सँ कीड़ा आदिक नारकीय योनि उपलब्ध होइछ। मनुष्य अपनकृत कर्मक प्रभावात जन्म, मृत्यु, जरा आदिक संताप सँ संतापित भए बारम्बार एहि संसार मे जन्म ग्रहण करैत अछि। एक देह कें छोड़ला पर जीव अपन कर्मफल सँ विविध योनि मे जन्म लए अनेक प्रकारक यातना कें सहैछ। हे ब्राह्मण ! मनुष्य कें विषय वासना कें छोड़ि सत्कर्मक पवित्रता कें प्राप्त कए तप एवं योग साधना करैछ तँ ओहि शुभकर्मक फल सँ पवित्र लोक मे जाइछ जतए शोक एवं संताप नहि रहैछ। जे ईर्ष्या कें छोड़ि शुभकर्म कें करैछ तथा उपकारक निमित्त कृतज्ञ रहैछ ओ व्यक्ति धर्म, अर्थ स्वर्ग तथा सुख प्राप्त करैछ।

मनुष्य कें चाही जे साधु-सन्तक सत्कार, धर्मक आचरण, शिष्ट व्यक्तिक व्यवहार करथि। अपन धर्मक अनुसार कार्य करला सँ लोकमध्य यशस्कर भ' होइछ। प्राज्ञ पुरुष धर्महि मे रमैछ तथा धर्महि हुनक वृत्ति होइछ। जो कखन राग ओ द्वेष आदिक वशीभूत नहि भए वैराग्यक आश्रय लैछ। ज्ञानेन्द्रा एहि साधन अछि जाहि सँ जीव कें मुक्ति प्राप्त होइछ जकर मूल शम एवं दम थिक, इन्द्रिय निग्रह, शम तथा दम सँ परम पदक प्राप्ति होइछ।"

धर्मव्याधक एहि वार्त्ता कें सुनि कौशिकक प्रश्नोत्तरक[1] द्वारा धर्म के काटला सँ कर्माशय रूपी दुःखक फल[2] एवं सुख दुःख रूपी स्वादक विनाश भए गेल तथा हुनक चंचल चित्त-वृत्ति स्वतः हुनकहि मे समाधित भए गेल। ओ नितान्त गंभीर भए बजलाह—"हे विवेकी! कर्माशय कें जन्म देनिहार शरीर एवं इन्द्रियेंटा नहि भए मनोवृत्ति सेहो चित्त जकर प्रेरणा सँ इन्द्रिय क्रियाशील होइछ तथा मनुष्य परिणाम,[3] संस्कार,[4] ताप[5] एवं गुण वृत्ति विरोध[6] एहि चारि दुःख सँ पीड़ित होइछ। हे धर्मात्मा! इन्द्रिय जे एतेक दुःखदायी चित्त छी की चित्त, ओकर निग्रह कोना कएल जाइछ तथा एहि सँ कोन लाभ भए सकैछ? से सभ विस्तारपूर्वक हमरा कहू।"

कौशिकक उत्सुकता कें बुझि व्याध नरजात शिशु सन स्वाभाविक आनन्दक उद्रेक सँ बजलाह—"हे विप्र! मानव योनि सर्वप्रथम रूप, रस आदिक ज्ञान प्राप्तिक यत्न करैछ। ज्ञान प्राप्तिक उपरान्त ओ काम-क्रोधक वशीभूत होइछ। तदुपरान्त ओहि विषय कें ग्रहणार्थ ओ पैघ सँ पैघ कार्यक अनुष्ठान करैछ तथा अपन इष्ट रूप, गन्ध आदि विषयक लगातार सेवन करैछ। एतकर्म राग, द्वेष, लोभ एवं मोहक उत्पत्ति होइछ। एहि तरहें लाभ सँ लाभान्वित तथा राग द्वेष सँ प्रभावित भेला सँ मनुष्यक धर्मबुद्धिक अन्त भए जाइछ तथा ओ पापमयक आचरण करैछ।

कपट व्यवहारक द्वारा धनक प्राप्ति भेला सँ मनुष्यक बुद्धि ओहि मे निमग्न भए जाइछ तथा ओकर पाप प्रवृत्ति प्रबल भए जाइछ। तदुपरान्त राग द्वेष सँ तीन प्रकारक अधर्मक उत्पत्ति होइछ। एहि अनन्तर मन सँ ओ पापक विचार, वाणी सँ पापक भाषण तथा शरीर सँ पाप कर्म करैछ। एहि तरहक आचरणे सँ लोक पापी भए जाइछ तथा जे व्यक्ति सुख एवं दुःख कें यथार्थ निर्णय मे निपुण भए अपन प्रज्ञा बुद्धिक प्रभाव सँ उपरोक्त दोष सँ पृथक् भए सज्जनक संगति करैछ हुनकहि बुद्धि सत्कर्मक सम्पादन सँ धर्म मे संलग्न रहैछ।"

---

१. विवेक ख्याति।
२. जाति, आयु, भोग।
३. ज्ञानेन्द्रियक वृत्ति मे सात्त्विक अनुभवक सुख।
४. विषय सुख कें उपलब्धि सँ रागक उत्पत्ति सँ क्लेश।
५. राग, द्वेषक वशीभूत भए मनुष्यक शुभाशुभ कर्मक फलाफल।
६. गुणक कार्यक नाम गुण वृत्ति चित्त। सतोगुणक कार्य प्रकाश सुखदायी, तमोगुणक कार्य अज्ञान-दुःखदायी तथा रजोगुण मोह कर्ता चित्त।

धर्मव्याधक उपरोक्त वचन के सुनि कौशिक सत, रज, एवं तम एहि तीन गुण सँ निर्लिप्त ज्ञानस्वरूप, सर्वथा शुद्ध, निर्विकार, कूटस्थ, असंग सन होइत कहलाह—"हे व्याध! स्तुति, निन्दा, परकृति एवं पुराकल्प सँ रहित सत्य धर्मक वक्ता अपन मध्य पाएब नितान्त दुर्लभ अछि। अहाँ सँ जोहि धर्मक वर्णन कए रहल छी। तदर्थ हमरा अहाँ दिव्य गुण सम्पन्न कोनो महर्षि प्रतीत होइत छी।"

कौशिकक उपर्युक्त वचन केँ सुनि व्याध पुनि कहए लगलाह—"हे ब्राह्मण! एहि लोक मे ब्राह्मणे महाभाग्यवान् एवं अग्रभोगी पितर थिकाह। अहाँ ब्राह्मण केँ प्रणाम कए हमरा सँ जाहि प्रश्नविद्या के श्रवण करू।" तदुपरान्त ओ पुनि कथन प्रारम्भ कएलैन्ह—"हे कौशिक! ई विश्व एवं सम चराचर जगत पञ्चमहाभूतमय थिक। कोनहुटा पदार्थ एहि सँ रहित नहि अछि। आकाश, पवन, अग्नि, जल एवं पृथ्वी पञ्चमहाभूत थिक। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध ई पाँचो आकर गुण थिक। अहू सभहक पृथक पृथक गुण एवं परस्पर गुणक वृत्ति अछि। पूर्व पूर्व गुण परम्परा क्रमानुसार ईश्वर, विराट तथा हिरण्यगर्भ एहि तीन गुणधारी मे संक्रामित होइत। एहि मे छठम गुण जे चेतना थिक ओकरा मोन, सातम गुण केँ बुद्धि तथा आठम गुण केँ अहङ्कार कहल जाइत। ई एवं पाँच इन्द्रिय, आत्मा, सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण, एहि सभहक समूह केँ अव्यक्त अर्थात् माया कहल जाइत। ई सभहा तथा इन्द्रिय सँ ग्रहण कोनिहार शब्द आदि पाँचो विषय मध्य एवं आत्मा तथा चौबीस गुण अछि। एहि मे किछु तँ इन्द्रिय ग्राह्य भेल सँ प्रकट तथा किछु इन्द्रियक पहुँचक बाहर भेला सँ अप्रकट अछि। हे ब्राह्मण हम जहाँ सँ ई सँ कहल आब कहू अहाँ केँ आर की दुष्कर अछि?"

पञ्चमहाभूतक गुणक वर्णन

धर्मव्याधक एहि उक्ति केँ सुनि कौशिक ज्ञान सँ मुक्त भेल स्वच्छन्द पक्षी सन अज्ञान रूपी मोहक जाल सँ छूटि भगवान केँ अनुभव करैत कहलाह—"हे धार्मिक श्रेष्ठ! ई पाँच महाभूत कहल जाइत ओकर प्रत्येकक गुण कहाँक कहल जाए।"

कौशिकक एहि उत्कण्ठा केँ जानि व्याध एतबाँ कहलाह—"हे कौशिक! पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, एवं वायु आदि सभ उत्तरोत्तर महागुण युक्त अछि। पृथ्वी मे पाँच गुण, जल मे चारि, तेज मे तीन, वायु मे दू तथा आकाश मे एक

गुण अछि। पृथ्वी मे शब्द, स्पर्श, रूप रस और गंध पाँच गुण अछि। जल मे शब्द, स्पर्श, रूप और रस चारि गुण अछि। तेज मे शब्द स्पर्श, एवं रूप तीन गुण अछि। वायु मे शब्द एवं स्पर्श दू गुण अछि तथा आकाश मे केवल शब्द गुण पाओल जाइछ। पञ्चमहाभूतक ई पन्द्रह गुण सभ भूत मध्य वर्तमान रहैछ जाहि मे सभ लोक सन्निहित रहैछ। ई सभ परस्पर अविच्छिन्न अछि। ई सँ परस्पर विषम भाव कें प्राप्त होइछ तें काल प्रेरित जीव एक शरीर कें छोड़ि अन्य शरीर कें प्राप्त करैछ। ई गुण जाहि कर्म सँ उत्पन्न होइछ तकरहि विपरीत कर्म सँ नष्ट होइछ। ई चराचर जगत जाहि पदार्थ सँ आवृत अछि जोहि सभ मे पाञ्चभौतिक धातुए परिमाणित होइछ। हे द्विज! इन्द्रिय जकरा ग्रहण कए सकैछ ओ व्यक्त तथा जे अनुमान एवं इन्द्रिय सँ बाहर अछि ओ अव्यक्त थिक। देहधारी व्यक्ति कें इन्द्रिय कें विषय सँ अवरोध कए आत्मतत्त्वक अनुसंधान करैछ तें ओ सभ मे व्याप्त तथा अपनहि मे सभ कें स्थित देखैछ। परावरज्ञ जाय प्रारब्ध कर्म सँ आवद्ध रहनहु जीवन भरि आत्मारूप सोयाधि अवस्थेक अनुभव करैछ तथा उपाधिशून्य भेला पर सभ अवस्था मे प्रत्यक्षी मात्र मध्य सर्वदा अपना कें व्याप्त देखनिहार पुरुष ब्रह्मस्वरूप प्राप्त कए कदापि अनिष्टक संयोग सँ क्लेशक प्राप्ति नहि करैछ। बुद्धि मार्ग प्रकाशक आत्मज्ञानक प्रभावें जाहि क्लेश कें जे पूर्वोक्त मायाक सँ उत्पन्न होइछ, मेटौलाक उपरान्त मुक्ति प्राप्त करैछ। विशुद्ध बुद्धि युक्त भेला पर जे पुरुष मुक्ति प्राप्त करैछ तकरा आत्मयोनि कहैछ। ओ पुनि आदि अन्त सँ हीन, निराकार, सुख दुख आदि विकार सँ रहित अनुपम अद्वितीय भए जाइछ।

हे द्विज श्रेष्ठ! जहाँ जे किछु हमरा सँ पूछैत छी ओकर मूल तप या आत्म तत्त्वक आलोचना थिक जे इन्द्रिय निग्रहक बिना कदापि नहि भए सकैछ। इन्द्रिय निग्रहे मनुष्य स्वर्गक एवं नरकक अधिकारी होइछ। इन्द्रिय दमने आत्मज्ञान एवं स्वर्गक साधन थिक। तदर्थ तपए यथार्थ योगविधि थिक। पाँच इन्द्रिय तथा छठम मन पर प्रभुत्व स्थापित कए जे आत्म तत्त्वक विचार मे निमग्न होइछ ओ जितेन्द्रिय पुरुष समस्त पापक अनर्थ सँ पृथक रहैछ। पुरुषक शरीर रथ, इन्द्रिय जाहि मे जोतल अश्व तथा मन या आत्मा ओहि रथक सारथी थिक। धीर एवं निपुण पुरुष इन्द्रिय रूपी अश्व कें वश मे राखि रथी सन सावधान भए परम सुख सँ संसार मध्य विचरण करैछ। धैर्य इन्द्रिय निग्रहक प्रधान साधन थिक। जे व्यक्ति तत्त्वज्ञानक प्रभाव सँ—यथार्थ दृष्टिक शक्ति सँ विषय सुख कें अत्यन्त तुच्छ बुझैछ तथा तत्त्वज्ञानक फल प्राप्त करैछ।"

मांस, रक्त तथा गुणक वर्णन

एतकेँ धर्मव्याधक सूक्ष्म विषयक वर्णन केँ सुनि कौशिक पुनि कहलाह—"हे धार्मिक श्रेष्ठ! जिस बुद्धि, चेष्टाक बाह्यमुखी मेला सँ सांसारिक विषय मे अवरोध कए अन्तर्मुखी बनाएब तथा अध्यात्म विषय मे संलग्न होएब निरोध थिक जे मांसाक तीनू गुणक विनाशक बिना नहि भए सकैछ। अतएव सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणक तत्त्वो केँ अहाँ हमरा सँ कहू।"

कौशिकक एहि आग्रह केँ सुनि व्याध एहि तरहेँ कहलाह—"हे भगवन्! तमोगुणक स्वरूप मोह, रजोगुणक प्रवृत्ति तथा सत्त्वगुणक रूप प्रकाश (ज्ञान) थिक। जे व्यक्ति इन्द्रियलोलुप, आलसी, अधिक काल धरि सुतएबाला, क्रोध, मोह, अविद्या तथा अज्ञान सँ परिपूर्ण छथि ओ तमोगुणी; अधिक विषय वासना तथा मन्त्रणाशक्ति अत्यन्त प्रबल छैन्ह, धैर्य रहित, मानी, चरित्रवान, मृदुभाषी तथा जे अपना केँ श्रेष्ठ बुझैत छथि ओ रजोगुणी तथा व्यक्ति अधिक काल धरि जगैत छथि, वीर, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, सर्वत्र प्रसिद्ध, धैर्य एवं क्रोध सँ रहित तथा विषय वासनाक आधिक्यता सँ रहित व्यक्ति छथि ओ सत्त्वगुणी पुरुष थिकाह।

सत्त्वगुणी पुरुष ज्ञानोपार्जनक पश्चात लोक व्यवहार मे लिप्त नहि भए तमोगुण एवं रजोगुण सम्बन्धी लोक व्यवहार केँ तिरस्कार करैछ तथा सर्वत्र संयमक उपदेश करैछ। मान अपमानक ज्ञान आदि सभ द्वन्द्व भाव शान्त भए जाइछ तथा संशय, बुद्धि निर्मूल भए जाइछ। शूद्रा एहि सत्त्वगुण सँ युक्त भेला पर वैराग्य एवं सुखिनक भाव केँ प्राप्त करैछ तथा सरलताक मात्राक आधिक्य भेला पर सत्त्वगुणी स्वभावक शूद्र ब्रह्मज्ञानक अधिकारी भए जाइछ। हे कौशिक! अहाँ जे पूछल तकर वर्णन मे हम कएल तखन आर अहाँ की पुछैत छी से कहू।"

धर्मव्याधक एहि उक्ति केँ सुनला सँ कौशिकक अन्तःकरण मे रजोगुण एवं तमोगुण विनिष्ट भए गेल तथा सत्त्वगुणक उदय सँ ओ अग्नि मे तपाओल कुन्दन जन प्रदीप्त होइत कहलाह—"इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख सँ आदि आत्माक मान होइछ जे शरीर केँ आश्रितानाक रूप मे ओकरा तँ चलबैत अछि किन्तु हे धिक! मनुष्य अपन शरीर मध्य अग्नि पार्थिव धातु केँ प्राप्त कए कोना देहाभिमानी भए जाइछ तथा प्राण आदि वायु कोन स्थान विशेष मे सन्निहित रहैछ से कहबाक कष्ट करू।"

कौशिकक एहि उत्सुकता पर व्याध अत्यन्त प्रसन्न भए कहलाह—"हे कौशिक! अग्नि शिरोभाग मे रहि समस्त शरीरक पालन करैछ, अर्थात नित्य

प्रकाशमान विज्ञानमय आत्मा चैतन्यमय आत्माक आश्रय लए शरीर मे चेतनाक संचार करैछ। प्राण ओहि चिदात्मा तथा विज्ञानात्मा मे वर्त्तमान रहि विविध प्रकारक चेष्टा करैछ। भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान सभ ओहि प्राण मे स्थित रहैछ। विद्वान सभ तत्त्व मे श्रेष्ठ ओहि ब्रह्मज्योति रूप प्राणक उपासना करैत छथि। चैतन्य एवं ज्ञान सँ युक्त प्राण प्राणीमात्र केँ सचेतन बनबैछ तथा जीवात्मा मे सनातन पुरुष विराट् रूपहि मोन, बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चभूतक शब्दादि विषय, प्रकृति एवं पुरुष विराट्। जीवात्मा प्राण वायुक प्रभाव सँ भीतर तथा बाहर सर्वत्र अपन शक्ति प्रसारित करैछ; समान-वायुक रूप मे भिन्न भिन्न गति केँ ग्रहण करैछ तथा अपान नाम धारण कए जठरानलक आश्रय सँ पक्वाशय एवं मलाशय मे मूत्र तथा मल केँ पहुँचबैछ। प्राण वायु केँ प्रयत्न,[1] कर्म,[2] तथा बल[3] एहि तीन विषय मे प्रवृत्त होइछ तँ उदान नाम धारण कए मनुष्य शरीरक प्रत्येक सन्धिस्थल मे व्याप्त रहि 'व्यान' नाम ग्रहण करैछ। एवंक्रमेँ एकहि प्राण स्थानविशेषक अनुसार पाँच नाम सँ प्रसिद्ध होइछ।

जठरानल त्वचा आदि सभ धातु मे व्याप्त रहैछ। जा प्राण आदि वायु सँ सञ्चालित भए अन्नादि रस, त्वचादि धातु तथा पित्तादि दोष केँ परिचालित करैत सम्पूर्ण शरीर मध्य परिभ्रमण करैछ। प्राण आदि वायु केँ एक स्थान पर संयोग मेला सँ सङ्घर्षक उत्पन्न होइछ। जाहि सँ प्रकट भेल उत्ताप केँ जठरानल कहल जाइछ जे अग्निरूप खाएल पदार्थ केँ पचबैछ। समान एवं उदान वायुक मध्य प्राण एवं अपान वायुक स्थिति रहैछ। एहि वायुक पारस्परिक सङ्घर्षक सँ उत्पन्न जठरानल शरीर केँ पुष्ट करैछ। वायु[4] भरि अग्निक स्थान केँ अपान कहल जाइछ। अपाने सँ शरीरस्थित प्राण आदि वायुक प्रवाह प्रकट होइछ। प्राण अग्निक वेग केँ लए मलद्वारक ऊपरक भाग पर टकराय पुनि ऊपर भए जाइछ तथा एवंक्रमेँ अग्नि केँ उभारैछ। नाभिक नीचाँ पक्वाशय[5] तथा ऊपर आमाशय[6] अछि। शरीरमध्य स्थित सभ प्राण वायुक स्थान नाभि थिक। नाड़ीजाल हृदय सँ नीचाँ, ऊपर तथा सब तरफ प्रसारित अछि। ई दसो प्रकारक प्राण-वायुक

---

१ कार्य करबाक चेष्टा।
२ चलब-फिरब।
३ बोझ उठेबाक शक्ति।
४ मलद्वार।
५ पचन जीवनक स्थान।
६ अपच जीवनक स्थान।

प्रभाव सँ शरीरक सभ भाग मे शुद्ध रस कें पहुँचबैछ। धीर एवं क्लान्तिरहित समदर्शी योगी एहि मार्ग सँ ब्रह्मक साक्षात्कार तथा आत्मा कें साक्षात् चक्र मे धारण करैत छथि। हे द्विज! एहि प्रकारें प्राण वायु तथा अपान वायु सभ शरीरधारीक शरीर मध्य स्थान छथि।

आत्मा कें स्थूल एवं सूक्ष्म दुइ शरीर छथि। एक शरीर प्राण आदि एगारह विकार सँ युक्त छथि तथा दोसर शरीर महाभूत आदि सोलह कला सँ निर्मित छथि। आत्मा नित्य मेलहू कर्मक अधीन छथि। धार्मिक आसिमन आत्मा ओहि दुइ शरीरमध्य स्थित रहैछ। योगबल सँ ओकर उपलब्धि होइछ। हे ब्राह्मण! कमल पत्र पर जलबिन्दु सन जे परमात्मा सोलह कला सँ युक्त अन्तःकरण मे विराजमान रहैत छथि से छेकह, नित्य एवं योगाभ्यास सँ प्राप्त होइत छथि। जीव जेना सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुणक मूल थिक तथा आत्माक अधीन रहैछ तहिना परमात्मा आत्माक आश्रय मे रहैत छथि। शरीरादि अचेतन पदार्थ जीवक उपभोगक स्थान थिक। आत्मा जीवरूप सँ स्वयं चेष्टा करैछ तथा ईश्वर रूप सँ सभ जीवमात्रक चेष्टाक नियामक थिक। आत्मे सँ जीव एवं सात भुवनक प्रवृत्ति[1] होइछ। प्राणी मात्रक आत्मा, अर्थात परमात्मा प्राणीमात्र मे गूढ़रूप सँ स्थित भेला सन्ता यद्यपि प्रकाशमान नहि छथि तथापि विज्ञजन अपन सूक्ष्म विचार सँ आत्मा कें देखैत छथि। जकर आत्मा पवित्र रहैछ ओ चित्तशुद्धिक बल सँ सभ शुभाशुभ कर्म कें नष्ट कए आत्म निष्ठाक प्रभाव सँ अन्त समय मे अनायासहि मोक्ष कें प्राप्त करैछ। जेना तुम मनुष्य निश्चिन्त भए सुखपूर्वक सुतैछ तथा वायु रहित स्थान मे दीपक ज्योति प्रज्वलित सँ प्रकाशमान होइछ तहिना चित्तशुद्धि सँ सम्पन्न व्यक्ति प्रसन्न रहैछ। जकर चित्त विशुद्ध रहैछ तथा जे स्वल्प आहार करैछ ओ व्यक्ति अपन मोन कें आत्म चिन्तन मे प्रवृत्त कए स्वतः अपनहि हृदय मे आत्माक साक्षात्कार करैछ। प्रदीप्त दीप सन मोनक दीप सँ निर्गुण आत्माक दर्शन पाबि मनुष्यक मुक्त होबबे सँ जीवन्मुक्ति थिक।

सभ उपाय सँ क्रोध एवं लोभ कें जीतब पवित्र तपस्या थिक जे संसार-सागर कें पार करबा मे सेतु सदृश मानल जाइछ। क्रोध सँ तप कें, ईर्ष्या सँ धर्म कें, मानापमानक स्मृति सँ ज्ञान कें तथा प्रमाद सँ आत्मा कें सतत् बचबाक चाही। अहिंसा परमधर्म, क्षमा परमबल, आत्मज्ञान परमज्ञान तथा सत्यहि परमपवित्र व्रत थिक। सत्य ओकरा कहल जाइछ जाहि सँ प्राणीमात्रक हित होइछ। ज्ञान एवं कल्याण प्राप्त करबाक सर्वोत्तम उपाय सत्ये थिक।

---

[1] सृष्टि।

जे व्यक्ति फलक इच्छाक बन्धन सँ मुक्त भए निष्काम कर्म करैछ तथा सब वासना केँ छोड़ि देह धरए सन्यासी एवं बुद्धिमान थिक। वासनाक विषयोंसँ केँ योग एवं ब्रह्मयोग कहल जाइछ। हे कौशिक! एहि जीवन मे कखनहु संग सम्पर्क तथा कोनहु प्राणीक हिंसा नहि करए सभहक संग मित्रताक भाव रखबाक चाही। सन्तोष, निष्काम भाव, अकिञ्चन भाव, धैर्य एवं आत्मज्ञान मे बँचि भेद ज्ञान प्राप्त करबाक साधन थिक। दान नहि लए सबहिक बनबाक चाही। वैराग्य सँ एहि लोक एवं परलोक मे शोकहीन निश्चल पदक प्राप्ति होइछ। दुर्लभ मोक्ष पदक अभिलाषी केँ सतत् तपक अनुष्ठान मे निरत, दम गुणावलम्बी, विशुद्ध हृदय ऋषि भए समस्त विषयक लिप्सा केँ छोड़बाक चाही। अकर सन्निकट लौकिक गुण, गुण रूप सँ नहि प्रतीत होइछ, प्रतिपादक अध्यात्म, प्राप्तिक उपाय आत्मज्ञान तथा जे सङ्गरहित एवं अक्षय सुखक आधार थिक तएह सँ ब्रह्म थिकाह। जे व्यक्ति सुख एवं दुख दुहू केँ त्यागैछ आकरहि ब्रह्मक साक्षात्कार तथा मुक्तिक प्राप्ति होइछ। हे द्विज श्रेष्ठ! हम जे किछु जनैत छलाह से अहाँ सँ कहल आब और की अहाँ केँ सुनबाक इच्छा अछि से कहू!"

माता-पिताक सेवा तथा महात्म्यक वर्णन

धर्मव्याधक उपरोक्त कथन केँ सुनि कौशिकक अन्तःकरण मे आत्मज्ञानक उदय भेला सँ ब्रह्मक साक्षात्कार मे लीन होइत ओ कहलाह—"हे निष्पाप! कोनो भ्रमर सँ मन्दभाग्यक निमित्त उड़ैछ आ कोनो मधुक लिप्सा सँ। किन्तु जे मधु केँ पेबि मस्त भए जाइछ आ ने तँ पुनि उड़ैछ वा ने ओकरा और अधिक मधुपानक इच्छे देख रहैछ। हे सौम्य! धर्मक प्रसंगक एहेन कोनोटा बात नहि अछि जे अहाँ केँ नहि बुझल अछि।"

कौशिकक एकमात्र वचन केँ सुनि धर्मव्याध कहलाह—"हे ब्राह्मण! आहि धर्मक प्रभाव सँ हमरा ई सिद्धि प्राप्त भेल ओकर प्रत्यक्ष दर्शन कए लिए। यह भव्य आबि हमर माता पिता केँ देखू।"

व्याधक एहि तरहक आग्रह पर कौशिक व्याधक घर गेलाह। घर देख भवन सहस्र मनोहर, स्वच्छ एवं सुसज्जित छल। समग्र भवन मधुर सुगन्ध सँ व्याप्त एवं स्वच्छ ज्योत्स्ना सँ मनोज्ञ प्रतीत होइत छल। व्याधक माता-पिता भोजनोपरान्त मनोहर आसन पर विराजमान छलाह। धर्मव्याध हुनका लोकनि केँ देखितहि प्रणाम कएलथिन्ह तथा ओ लोकनि आशिर्वचन देत कहलाह—"हे धर्मज्ञ! अहाँ क दीर्घ आयु हो। अहाँ इहगति, ज्ञान, तप एवं बुद्धि प्राप्त

करने छी। हे पुत्र! जहाँ वह वस्तु छी। जहाँ नित्य विधिपूर्वक अहाक तेन हमरालोकनिक पूजा एवं सम्मान देवतो सँ बढ़ि कए करैत छी। जहाँक अन्तःकरण अत्यन्त पवित्र अछि। जहाँ ब्राह्मण तन जितेन्द्रिय छी। जहाँक पितामह एवं प्रपितामह जहाँ कें एहि प्रकार भक्ति सँ माता पिताक पूजा कें देखि जहाँ पर नितान्त प्रसन्न छथि। जहाँ मोन, वाणी, तथा काया सँ हमरालोकनिक सेवा करैत छी तथा जहाँक भक्तिभाव कखनहि कम नहि होइछ"।

एतबामें श्रवण माता पिताक कहलाक उपरान्त धर्मव्याध दुनका लोकनि कें कौशिकक वृत्तान्त कहलथिन्ह। धर्मव्याधक द्वारा कौशिकक परिचय प्राप्त कए ओ लोकनि दुनकर सेवा सत्कार कएलथिन्ह। तदुपरान्त कौशिक अत्यन्त विनम्र भए दुनकालोकनि सँ पुछलथिन्ह—"हे सौम्य! अहाँ लोकनि कुशल तँ छी? अहाँ कें दुःखदायक कोनो व्यथा तँ नहि अछि?"

कौशिकक एहि वचन कें सुनि व्याधक माता पिता प्रत्युत्तर देत कहलाह—"हे ब्राह्मण! हमरालोकनि पूर्ण प्रसन्न छी। अहाँ सँ एतए निश्चिन्त अएलहुँ। मार्ग में कोनो कष्ट तँ नहि भेल?"

दुनकालोकनिक सद्भावना सँ प्रेरित वचन कें सुनि कौशिक कहलाह—"हम एतए नीक जकाँ अएलहुँ।"

तत्पश्चात कौशिक कें देखि धर्मव्याध कहए लगलाह—"हे भगवन! हे माननीय हमर परम देवता पिताह। देवताक निमित्त जे पूजा आराधना विहित अछि से सभ हम हिनक लोकनि कें करैत छी। लोक जेना इन्द्रादि तैंतीस प्रधान देवताक पूजा करैत छथि तहिना हम एहि माता पिताक पूजा करैत छी। ब्राह्मण जेना विविध प्रकारक पूजोपचार सँ देवताक पूजा करैत छथि तहिना हम आलस्य कें छोड़ि माता पिताक पूजा करैत छी। हम हिनके यज्ञ एवं चारू वेद बुझैत छिऐन्ह। हमर पुत्र, भार्या, सुहृद् एवं प्राण धरि जे किछु हमरा अछि ओ सभ हिनकहि लोकनिक हेतु अछि। हम नित्य श्रवण स्त्री एवं पुत्रक संग हिनकालोकनिक सेवा करैत छी। हिनकर प्रिय कार्यक सम्पादन में जँ अधर्म होइछ तँ हमरा कोनो टा संकोच नहि होइछ अछि। जे व्यक्ति श्रवण माता पिताक सेवा करैछ ओकरा नित्य अग्निहोत्र करबाक फल प्राप्त होइछ। एहिप्रकारक रहनिहारक निमित्त इहए सनातन धर्म थिक।"

धर्मव्याधक पूर्व जन्मक वृत्तान्त

माता पिताक माहात्म्यक वर्णनक उपरान्त धर्मव्याध पुनि कहब प्रारम्भ करल—"हे भगवन! माता पिताक सेवाकरब हमर सहज स्वभाव तँ देन्हु।

जो पतिव्रता अहाँ कें एतए अएबाक प्रसंग मे कहल से सभ हमरा एहि तपक प्रसादात् प्राप्त भेल दिव्य दृष्टिक प्रभाव सँ अवगत भएलेल छल।"

धर्मव्याधक एहि कथा कें सुनि कौशिक कहलाह—"हे धर्मात्मा! मुक्त जीव सत्यकाम एवं सत्य-संकल्प होइछ। जो पतिव्रता हमरा जहिना अहाँक परिचय देलैन्ह हम वस्तुतः तहिना अहाँ कें प्रभावशाली एवं ज्ञानी पाओल।"

कौशिकक एहि कथा कें सुनि व्याध कहलाह—"हे ऋषिश्रेष्ठ! जो पतिव्रता हमरा नीक जकाँ बनेत छथि तदर्थ जो अहाँ कें हमरा एतए पठौलैन्ह। आब हम अहाँक हितक कामना सँ जे किछु करैत छी से सुनू।

हे ब्राह्मण! अहाँ अपन माता-पिताक सेवा शुश्रूषा नहि कए हुनकर आज्ञाक बिना हुनकालोकनि कें अनादर कए वेदक अध्ययनक निमित्त घर सँ निष्क्रमण कएल। अहाँक ई कार्य युक्ति संगत नहि भेल। अहाँक स्नेह सँ आतुर एवं चिन्ता सँ कातर भए जो लोकनि आन्हर भए गेल छथि। अहाँ तपस्वी, धर्मनिष्ठ एवं महात्मा छी। अतएव अहाँ हुनकालोकनिक प्रसन्नताक हेतु एहि आश्रम भए जाउ अन्यथा अहाँक सभ उपार्जित पुण्यक विनाश भए जाइत।"

व्याधक उपरोक्त कथन कें सुनि कौशिक कहलाह—"हे निष्पाप! हम अहाँक एहि परामर्श कें सुनि नितान्त प्रसन्न भेलहुँ तथा अहाँक सद्भावना सँ प्रेरित कथाक पालन तत्पर करब।"

कौशिकक एहि उक्ति कें सुनि व्याध पुनि कहलाह—"हे विप्र! अहाँ जाहि अनादि सनातन धर्मक अनुष्ठान कए रहल छी से साधारण आत्मज्ञानहीन व्यक्ति नहि कए सकैछ। अहाँ एहि धर्मक प्रभाव सँ देवतुल्य भए गेल छी। अतएव आब अहाँ कें माता-पिताक समक्ष जाए हुनकर पूजा एवं सेवे करब उचित थिक।"

धर्मव्याधक एहि कथा कें सुनि कौशिक एकाकीमें कहए लगलाह—"हे पुरुष श्रेष्ठ! भाग्यक प्रसादात् हम एतए धरि अएलहुँ। हे धर्मज्ञ! हम अहाँक सत्यनिष्ठा कें देखि अत्यन्त प्रसन्न भेलहुँ। अहाँ कें भगवान नीक करथु। हम अहाँ कें शूद्र नहि बुझैत छी किएक तँ शूद्र कें सूक्ष्म सनातन धर्मक ज्ञान कदापि नहि भए सकैछ। प्रतीत होइछ जे भवितव्यताक वश अहाँ शूद्र योनि मे उत्पन्न भेलहुँ। हमरा अत्यन्त उत्सुकता अछि जे अहाँ कोन कर्मक फल सँ एहि शूद्र-योनि कें प्राप्त कएलहुँ अछि।"

कौशिक एहि आमह कें मानि धर्मव्याध कहए लगलाह—"हे ब्राह्मण ! हम पूर्वजन्म मे ब्राह्मण छलहुँ। हमर जन्म एक श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश मे भेल तथा वंश परम्परागत वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र एवं पुराणक पूर्ण अध्ययन कएल। हमर विद्या, गुण एवं पराक्रम पर आकृष्ट भए नगरक धनुर्वेद मे निपुण राजा हमरा अपन मित्र बनौलेन्ह। राजाक सम्पर्क मे रहि हमहुँ शस्त्रविद्या मे पारंगत भए गेलहुँ। एक समय मे जो राजा अपन प्रधान-प्रधान योद्धा, मंत्री आदि के संग लए मृगयार्थ एक वन मे गेलाह। राजाक संग हमहुँ छलौंह। वन मे एक आश्रमक समीप हमरा लोकनि अनेक मृगक शिकार कएल। दैववशात् हमरा द्वारा प्रक्षिप्त बाण एक ऋषि कें आहत कएल। ऋषि तत्क्षण धाराशायी भए गेलाह। जो व्यथा सँ आर्तनाद करैत कहलाह—'हम तँ कखनहु कोनो ग अपराध नहि कएल तखन ई पाप कर्म के कएलक ?' "हे कौशिक ! हम तँ आनन्द मे उत्फुल्ल भए छोतए गेलहुँ जे एक मृग कें मारल अछि किन्तु ऋषि कें तड़पैत देखि असीम व्यथाक अनुभव कएल। दुख सँ विह्वल होइत हम स्वतः अपना कें धिक्कारैत समीप जाए हम ऋषिक अनुनय करैत कहल—हे भगवन ! बिना जानल हमरा सँ ई अपराध भेल। अपने क्षमा करू। किन्तु मुनि क्रोध सँ अधीर भए कहल—"रे क्रूर ! तू व्याध भए शूद्र योनि मे जन्म ग्रहण कर।" हे द्विज श्रेष्ठ ! ऋषिक एवं क्रमक शाप कें सुनि हम पुनि हुनक प्रार्थना करैत कहल—हे भगवन ! हम अज्ञानावस्था मे ई अनुचित कर्म कएल। तदर्थ हमरा अपने क्षमा करू। एहि तरहें ऋषिक अभ्यर्थना कएला पर ऋषि प्रसन्न भए कहलाह—'हमर शाप तँ मिथ्या नहि भए सकैछ किन्तु अहाँ पर हम एतेक कृपा करैत छी जे अहाँ शूद्र योनि मे उत्पन्न भेलहुँ माता-पिताक सेवा करब तथा अहाँ कें धर्मक ज्ञान सतत् बनल रहत। माता-पिताक सेवाक प्रभाव सँ महासिद्धि पाबि अहाँ कें पूर्वजन्मक स्मृति रहत तथा अहाँ कें स्वर्ग प्राप्त होएत। हमर एहि शापक अन्त भेला पर पुनि अहाँ कें ब्राह्मणक योनि प्राप्त होएत।"

हे ब्राह्मण ! जो उग्रतेजस्वी ऋषि शाप दए पुनि एहि तरहक कृपा कएलैन्ह। हम ऋषिक शरीर सँ बाण निकालि हुनका अपन आश्रम मे पहुँचाओल। भगवानक कृपा सँ जो नीके भए गेलाह। हे भगवन ! हम अपन पूर्व जन्मक घटना एवं एहि जन्मक नीच योनि मे उत्पन्न होएबाक कारण कें अहाँ कें सुनाओल।"

धर्म व्याधक एहि कथा कें सुनि कौशिक कहलाह—" हे सौम्य ! मनुष्येतर

योनि मे जीव अपन कर्म कें भाव भोगैत अछि किन्तु जे किछु ओ एहि योनि मे करैछ ओकर ओ जिम्मेवार नहि होइछ। अतएव अहाँ कें दुखी नहि देखबाक चाही। अहाँ लोकक चरित्रक तत्वक ज्ञाता रहितहुँ अपन जाति कें जानि मृगया कर्म कएल जे ब्राह्मणक हेतु सर्वदा अनुचित छल। ओहि कर्मक फल तँ किछु दिन धरि अहाँ कें भोगए परत। तदुपरान्त अहाँ पुनि ब्राह्मण योनि मे जन्म ग्रहण करब। मुदा हम तँ अहाँ कें अहू जन्म मे ब्राह्मणे बुझैत छी किएक तँ जे शूद्र इन्द्रिय दमन, सत्य एवं धर्म पर प्रीति रखैछ ओ ब्राह्मणे बुझल जाइछ। मनुष्य सचरित्रे सँ ब्राह्मण भए सकैछ। अतएव अहाँसन लोक-वृत्तान्तक ज्ञाता कें दुखानुभव नहि करबाक चाही।"

कौशिकक एहि उक्ति कें सुनि व्याध बजलाह—"हे विप्र! मोनक दुख के बुद्धि सँ तथा शरीरक दुख कें औषध आदि सँ निवृत्त करबाक चाही। संसारमध्य सुख एवं दुख सभ कें भोगैए पड़ैछ। अतएव ज्ञानी सुख एवं दुख दुहु कें छोड़ि सुखी होयबाक यत्न करैछ। जे व्यक्ति ज्ञान मार्ग कें प्राप्त कएल ओ शोकानुभव नहि करैछ किएक तँ ओ परमगति पर लक्ष्य कें रखैछ। कार्य कएला सँ फलक प्राप्ति तँ होइतहि छैक। उद्योग सँ उदासीन रहला सँ नीक होइछ। अतएव दुख अएला पर दुख सँ निवृत्तिक निमित्त यथोचित उद्योग करबाक चाही। तत्वज्ञानक पारदर्शी प्राणीमात्र कें विनाशशील होएबाक विचार कए कथमपि शोकक अनुभव नहि करैत छथि। हे ब्राह्मण! हमहुँ शोकानुभव नहि करैत छी। समयक प्रतीक्षा मे रहि एहि शरीर मध्य रमैत छी।"

व्याधक एहि कथन कें सुनि कौशिक अत्यन्त विह्वल भए बजलाह—"हे धर्मज्ञ! अहाँ ज्ञानी छी तथा अहाँक बुद्धि अथाह अछि। अहाँ सतत् पाप सँ पृथक रहैत छी। अतएव हम अहाँक एहि हीन योनिक निमित्त शोकानुभव नहि करैत छी। हे नरश्रेष्ठ! आब हमर एतए सँ प्रस्थान करबाक इच्छा अछि। अहाँक सतत् कल्याण हो तथा अहाँ सर्वदा धर्मक पालन कएल करी।"

एतबकमें कौशिकक कहला पर व्याध हाथ जोड़ि कौशिक कें विदाह कएल। व्याधक प्रदक्षिण कए कौशिक अपन गृह कें प्रस्थान कएल। गृह आबि कौशिक तन, मोन, धन सँ अपन माता-पिताक सेवा शुश्रूषा करए लगलाह।

लेखक

लेखक अन्य कृत ग्रंथ

१. महाकवि विद्यापति नाटक (मैथिली) मूल्य २) टाका
२. कन्दर्पीघाट नाटक (मैथिली) मूल्य १) टाका
३. शास्त्रार्थ नाटक (मैथिली) मूल्य १ टाका ५० पैसा
४. एकादशी (मैथिली) मूल्य १) टाका ५० पैसा
५. विद्याधर-कथा (मैथिली) मूल्य २) टाका
६. उर्वशी (मैथिली) मूल्य ३) टाका
७. कालचक्र की उत्पत्ति एवं उत्पन्न क्रमों की संक्षिप्त व्याख्या (हिन्दी) मूल्य ६) रुपये।

पुस्तक प्राप्ति स्थान

ग्रन्थालय
टावर चौक, दरभंगा

शिक्षा सदन, सुपौल
सहरसा

एवं

श्री अमरनाथ झा
द्वारा—बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना-१